गीता का नीतिशास्त्र

❖ गीता का परिचय :

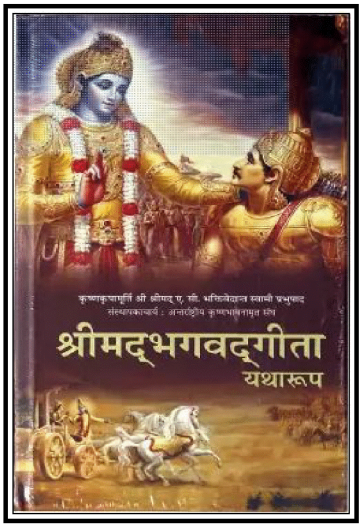

- **गीता का आशय** :- गीता का शाब्दिक अर्थ है - 'जो गाई गई है'। भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं जिसका छंद रूप गायन किया उसका नाम श्रीमद्भागवत गीता है।
- गीता में उपनिषदों का सार निहित है इसलिए इसे ''गीतोपनिषद्'' भी कहा जाता है।
- गीता को सुगीता भी कहा जाता है क्योंकि इसमें वर्णित श्लोक अच्छे से गाने योग्य व समझने योग्य है।
- यह पंचम वेद व महाभारत के **'भीष्म पर्व'** से ली गई है। इसमें 18 अध्याय व 700 श्लोक है।
- महाभारत/गीता के रचयिता - **वेदव्यास**
- इसे **'प्रस्थान त्रयी'** का भाग माना जाता है। (प्रस्थान त्रयी - उपनिषद्, गीता, व ब्रह्मसूत्र)
- **गीता के प्रमुख अध्याय** -

  1. अर्जुन विषाद योग 2. सांख्य योग 3. मोक्ष संन्यास योग

- ब्राह्मण सूत्र, उपनिषद् व भागवत गीता-हिंदू वेदांत दर्शन के मुख्य स्तम्भ माने जाते हैं।
- यह वेदों तथा उपनिषद्ों के नैतिक और दार्शनिक सिद्धांतों का समन्वय स्थापित कर सार तत्व प्रस्तुत करती है।
- गीता का नैतिक उपदेश है कि ये सर्वकालिक व सार्वभौमिक है तथा इसकी प्रासंगिकता त्रिकालिक है। (वर्तमान, भूत व भविष्य)।
- गीता के नैतिक उपदेश सरल, व्यावहारिक और उपयोगी है।
- गीता मूल रूप से अर्जुन की नैतिक दुविधा किम्कर्त्तव्यविमुढ़ता (असमंजस्य) को दूर करती है।
- इसमें नैतिक दृष्टिकोण के जरिए आध्यात्मिक विकास के कई तरीके बताए गए हैं।
- इसमें दार्शनिक वाद-विवाद की जगह नैतिक उपदेशों पर अधिक बल दिया गया है।

- **महाभारत में अर्जुन नैतिक दुविधा में फँसा हुआ है। जैसे-**

- ◆ युद्ध किया जाए, या नहीं?
- ◆ युद्ध क्यों लड़ना चाहिए?
- ◆ युद्ध का परिणाम क्या होगा?
- ◆ क्या अपने परिवारजनों के विरूद्ध युद्ध लड़ना उचित है?
- ◆ युद्ध को विकल्प के रूप में क्यों अपनाया जाए?

- नैतिक उपदेशों के माध्यम से श्रीकृष्ण अर्जुन की दुविधा को दूर करते हैं।
- भावनात्मक दुर्बलता के कारण अर्जुन अन्याय के विरूद्ध युद्ध करना अस्वीकार करता है अर्थात् मूल कर्त्तव्यों का उल्लंघन करने पर भी तत्पर हो जाता है। अत: श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को स्व-कर्त्तव्य पालन का पाठ पढ़ाया जाता है। श्रीकृष्ण ने आत्मा की अमरता के आधार पर अर्जुन को युद्ध के लिए तैयार किया और कहा कि शरीर मरता है आत्मा नहीं और दुनिया में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जिसकी मृत्यु न हुई हो और न होगी ।
- भगवान श्रीकृष्ण-अर्जुन से कहते हैं कि व्यक्ति को अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करना चाहिए बिना यह सोचे की उस कर्त्तव्य के निर्वहन से सुख प्राप्त होगा या पीड़ा।
- श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हैं कि वह एक योद्धा है अत: उसे अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करना चाहिए (वर्ण-धर्म के अनुसार)।
- श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि युद्ध करने से कोई हानि नहीं है। यदि वह जीतता है तो पृथ्वी को भोगेगा और यदि हार जाता है तो वह स्वर्ग का आनंद लेगा।
- श्रीकृष्ण युद्ध को 2 आधारों पर न्यायसंगत बताते हैं -

1. सांख्य-विवेक है।
2. योग-कर्त्तव्य निर्वहन की कला।

- सांख्य-कहता है कि आत्मा शरीर से अलग है। योग-श्रीकृष्ण ने योग को मन का धैर्य कहा है। योग को शांति प्राप्ति का मार्ग बताया है। योग प्राप्ति के लिए व्यक्ति वस्तुओं के प्रति अपनी इच्छाओं का त्याग करेगा। इस प्रकार योग से तात्पर्य है कि-'व्यक्ति अपनी इंद्रियों, मनोवेगों और इच्छाओं को नियंत्रित करते हुए, स्वकर्त्तव्यों का पालन करे।'
- गीता को योगशास्त्र भी कहा जाता है क्योंकि यह ब्रह्म विद्या पर आधारित तथा आचार व्यवहार व आचार मीमांसा इसका मुख्य विषय है।

❖ सकाम कर्म :

- जब व्यक्ति अपनी इच्छाओं और कामनाओं से प्रेरित होकर शारीरिक या मानसिक कर्म करता है अर्थात् फल की इच्छा से वशीभूत होकर कर्म करता है वहीं सकाम कर्म है।

❖ अनासक्ति योग :

- 'इंद्रिय विषयों के प्रति अनिच्छा/विरक्ति का भाव।' जब व्यक्ति इंद्रिय विषयों के बारे में चिंतन करता है तब उन विषयों के प्रति आसक्ति उत्पन्न होती है। आसक्ति से कामनाएँ उत्पन्न होती है, कामनाओं से क्रोध उत्पन्न होता है क्रोध से विवेक समाप्त होता है जिससे स्मृति का नाश होता है और स्मृति से बुद्धि का नाश होता है जिसके (बुद्धि) नाश से मनुष्य का नाश होता है। इसलिए इन्द्रिय विषयों का चिंतन नहीं करना चाहिए अर्थात् अनासक्ति, स्थितप्रज्ञता से पूर्व की स्थिति है। बुद्ध ने कहा है कि-इच्छाएँ ही मनुष्य के दु:ख का कारण है।

❖ स्थित प्रज्ञ :

- यह मनुष्य की मानसिक अवस्था है जिसमें व्यक्ति पूर्ण बौद्धिक स्थिरता को प्राप्त करता है अर्थात् जिस मनुष्य ने अपनी समस्त मनोकामनाओं को वश में कर लिया है और जो लाभ-हानि, जय-पराजय तथा सुख-दु:ख में समत्व (समान) भाव रखता है अर्थात् हर्षित एवं दु:खी नहीं होता और जो किसी से राग-द्वेष नहीं रखता उसे 'स्थितप्रज्ञ' कहा जाता है। निष्काम मार्ग पर चलने के लिए व्यक्ति का स्थिर होना आवश्यक है अर्थात् जिसकी बुद्धि अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ या स्थिर हो गई हो उसे 'स्थित प्रज्ञ' कहा जाता है।
- सम दु:ख सुखं धीरं - दुख व सुख में समान रूप से धैर्यवान रहना।
- सुख दु:खे समे कृत्वा - कर्त्तव्य पालन हेतु सुख-दु:ख, लाभ-हानि व विजय-पराजय को समान समझो।
- सिद्ध सिद्धयो समो - सफलता व असफलता में समान रहना।

□ स्थित प्रज्ञ की विशेषताएँ :

1. जो दु:ख में विचलित नहीं होता।
2. जो सुख में हर्षित नहीं होता।
3. जो आसक्ति, भय और क्रोध से मुक्त है।
4. जो अपने आप में संतुष्ट रहता है।
5. जिसका कामनाओं पर नियंत्रण है।
6. जो अन्यों से राग-द्वेष न रखें।

❖ स्थितप्रज्ञ का प्रशासन में उपयोग :

1. प्रशासक पक्षपात से दूर होकर प्रभावी निर्णय करता है।
2. संघर्ष समाधान में सहायक।
3. तनाव प्रबंधन में सहायक।
4. संप्रेषण में सुधार/बेहतर संवाद स्थापित होना।
5. प्रभावी नेतृत्व/जीवन की विभिन्न समस्याओं को हल करने में सहायक।
6. उत्पादकता में वृद्धि।
7. प्रशासक अपनी भावनाओं को नियंत्रण में रखकर तथ्यों व साक्ष्यों को अधिक महत्व देता है।

❖ लोकसंग्रह (सामाजिक कल्याण) :

- यह एक नैतिक मानदण्ड है। इस मानदण्ड के अनुसार व्यक्ति को पूरे विश्व के एकीकरण, संवर्द्धन व उन्नति के लिए कार्य करना चाहिए अर्थात् जनकल्याण हेतु स्वकर्त्तव्य का पालन करना चाहिए।
- **बाल गंगाधर तिलक के अनुसार** – 'जनहित के लिए अपने आपको उत्सर्ग (न्योछावर) करने की उत्तम भावना' ही लोकसंग्रह है।
- गीता में लोकसंग्रह के आदर्श द्वारा सामाजिकता (समाज की एकता व भलाई), वैयक्तिक्ता (समाज के साथ निजी लक्ष्यों की प्राप्ति) व आध्यात्मिकता (व्यक्ति सभी दु:खों से मुक्त होकर लोकातीत अवस्था को प्राप्त करता है) का समन्वय किया है।
- यह निष्काम कर्म मार्ग से संबंधित भी है। जब कोई व्यक्ति फल की आसक्ति को त्याग कर कोई कर्म करता है तो उसके कर्मों का एक उद्देश्य **लोकसग्रंह/लोककल्याण** होना चाहिए।
- गाँधीजी स्वयं को राजनीति में होने का औचित्य लोक संग्रह के आदर्श को देते हैं।
- गाँधीजी के अनुसार देश और सम्पूर्ण मानवता की सेवा ही मोक्ष का मार्ग है।

❖ लोकसंग्रह की प्रशासन में प्रासंगिकता :

1. सामाजिक कल्याण हेतु प्रेरित।
2. हितों के टकराव से रक्षा।
3. यह लोक कल्याण के सामाजिक व प्रशासनिक उद्देश्यों के अनुरूप है।
4. सामाजिक उत्थान व कल्याण के लिए समस्त कार्यों का निष्पादन।
5. नीति क्रियान्वयन में लोकहित को प्राथमिकता।
6. जन शिकायत निवारण की व्यवस्था है।
7. अंतिम मील तक पहुँचना (अंत्योदय)।
8. जन सशक्तिकरण को बढ़ावा।
9. स्वयं व समाज के हितों का एकीकरण करना।

गीता में स्वधर्म

- गीता में स्वधर्म में 'स्व' शब्द व्यक्तिपरक न होकर 'वर्णपरक' है और धर्म शब्द-'कर्त्तव्य' के लिए आया है। गीता में स्वधर्म से तात्पर्य गुण व कर्म के आधार पर वर्गीकृत 'वर्णों के लिए निर्धारित कर्त्तव्यों का पालन करना है।'
- स्वधर्म के पालन से सामाजिक व्यवस्था बनी रहे एवं समाज में अधिकारों के लिए वर्ग-संघर्ष न हो।

❖ **स्वधर्म का प्रशासन में उपयोग :**

(I) श्रम विभाजन पर बल देना। (II) जन सेवा करना। (III) हितों में टकराव नहीं होना।

गीता व प्लेटो

- निश्चित कर्त्तव्यों का पालन करना स्वधर्म है। **प्लेटो के न्याय सिद्धांत के अनुसार**-जब समाज का प्रत्येक वर्ग क्रमशः अभिभावक, योद्धा व उत्पादक (विवेक, साहस व संयम) अपने निश्चित कर्त्तव्यों को पूरा करते हैं तो राज्य में न्याय की स्थापना होती है।

आपद् धर्म

- संकटकाल में व्यक्ति स्वयं के कर्त्तव्यों को छोड़कर अन्य के कर्त्तव्यों का पालन भी कर सकता है। इस अवधारणा को 'आपद् धर्म' कहा जाता है। **जैसे**-महामारी के काल में, बाढ़, भूकम्प व अन्य प्राकृतिक आपदा के समय।
- अपवाद स्वरूप किसी आकस्मिक व आपातकालीन स्थिति में अपने विशिष्ट कर्त्तव्य के पालन को स्थगित करके दूसरे वैकल्पिक कर्त्तव्य का पालन करना।

गीता में परधर्म

- जो दूसरों के लिए उनके वर्ण के अनुसार नियत व निश्चित कर्त्तव्य है उसे 'परधर्म' कहते हैं।
- गीता के अनुसार अपने नियत कर्मों का दोषपूर्ण ढंग से पालन करना अन्य के कर्मों को भली भांति करने से श्रेष्ठ है।
- तदर्थ कर्म - गीता में निष्काम कर्मयोग, बुद्धियोग व समत्व योग आदि तदर्थ कर्म के रूप में जाने जाते है।

❖ समत्व/समदर्शिता:

- यह गीता का एक आदर्श है जिसके अनुसार विद्वान व्यक्तियों को सभी प्राणियों के हितों के प्रति एक समान व निष्पक्ष दृष्टिकोण रखना चाहिए। यह केवल मानव पर ही नहीं बल्कि पशु व जानवरों पर भी लागू होता है। यह पर्यावरण चेतना के लिए अहम् है।
- **समदर्शी भाव** - सांसारिक विषय वासनाओं से दूर होकर प्रत्येक प्राणी को परमात्मा स्वरूप मानकर सभी को समान भाव से देखना।

❖ सर्वभूताहितेरता:

- यह गीता में एक नैतिक आदर्श है। इस आदर्श के अनुसार व्यक्ति के कार्यों का लक्ष्य सभी का कल्याण होना चाहिए। पश्चिमी नीतिशास्त्र में उपयोगितावादी 'अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम सुख' के मानदण्ड को स्वीकार किया गया है। सर्वभूताहितेरता का मानदण्ड अधिकतम से आगे बढ़कर सबके कल्याण/हित को बढ़ावा देता है।

❖ गीता में प्रवृत्ति व निवृत्ति में समन्वय :

- **निवृत्ति**-सांसारिक व लौकिक जीवन का त्याग।
- **प्रवृत्ति**-भौतिकवादी जीवन।
- **मध्यम मार्ग**-सांसारिक जीवन में रहते हुए भी सांसारिकता का मोह त्यागना।
- गीता इन दोनों अतिवादी विचारों का समर्थन नहीं करती है। व्यक्ति को सांसारिक जीवन में रहते हुए बिना किसी आसक्ति के अपने स्वधर्म (कर्त्तव्यों) का पालन करना चाहिए।
- कर्त्तव्यों से भागना संन्यास का मार्ग नहीं है।
- **राजर्षि**-राजा निस्वार्थ जनकल्याण को प्रदर्शित करता है।
- **ऋषि**-दैवियता को दर्शाता है। इसलिए प्रशासक को भी नि:स्वार्थ भाव से जनकल्याण हेतु कार्य करना चाहिए।
- व्यक्ति को सभी जीवों के कल्याण हेतु कार्य करना चाहिए क्योंकि इस संसार में जो कुछ भी है वह ईश्वर का ही अंश है।

❖ दैवीय और आसुरी सम्पदा :

- दैवीय प्रवृत्तियाँ-सद्गुणों को दैवीय सम्पदा कहा जाता है। इनसे व्यक्ति मोक्ष की तरफ उन्मुख होता है।
- जैसे-दानशीलता, इंद्रिय संयम, शास्त्रों का अध्ययन, तपस्या, करुणा, उत्साह, क्षमा, धैर्य, सत्य, अक्रोध , चित्त की शुद्धता, अभिमान न होना, त्याग की भावना, अपशब्द न बोलना व निरर्थक कर्मों से बचना।

❖ **आसुरी प्रवृत्तियाँ/अदैवीय शक्तियाँ :**

☞ अभिमान	☞ क्रोध	☞ तृष्णा	☞ कामना
☞ घृणा	☞ वासना	☞ अज्ञानता	☞ लोभ
☞ झूठ	☞ धन की लालसा	☞ चंचल इच्छाएँ	☞ नास्तिकता
☞ हृदय की अशुद्धता	☞ सुखों की कामना	☞ भौतिकता।	

- जिस व्यक्ति में इन सभी अवगुणों का समावेश होता है उसमें आसुरी प्रवृत्तियाँ पायी जाती है।

योग की अवधारणा

- गीता में योग शब्द का प्रयोग स्वयं को जोड़ने व लगाने के संदर्भ में किया गया है। यह आत्मा-परमात्मा के मिलन के संदर्भ में प्रयुक्त हुआ है अर्थात् आत्मा-परमात्मा का मिलन ही योग है। यह संतुलन या साम्य की अवस्था के संदर्भ में भी प्रयुक्त हुआ है। जैसे-ज्ञान योग से तात्पर्य है व्यक्ति को ज्ञान से जोड़ना।

1. **समत्व योग** - सफलता व असफलता में संतुलन बनाए रखना। व्यक्ति के लिए निर्धारित सामाजिक कर्त्तव्यों के पालन में पूर्ण निष्ठा से स्वयं को लगा देना योग है। 'सुख-दु:ख, लाभ-हानि व जय-पराजय' आदि में समस्थिति बनाये रखना, समत्व है और यह समत्व भाव ही योग है। समत्व बुद्धि तभी उत्पन्न हो सकती है जब मनुष्य मन व इन्द्रियों पर नियंत्रण कर लेता है। समत्व भाव से कर्मों में कुशलता प्राप्त करना योग है। इसे ही 'समत्वय् योग उच्चयते' कहा गया है।

2. **अनासक्ति योग** - गीता पर गाँधीजी द्वारा लिखे गए भाष्य में सांसारिक विषय सुखों से आसक्ति हटाकर आध्यात्मिक विकास की चेष्टा करना ही अनासक्ति योग है।

योग: कर्मसु कौशलम्

- कर्मों की कुशलता ही योग है अर्थात् निष्काम भाव से स्व-कर्त्तव्य का पालन करना या फल की इच्छा न करते हुए कर्मों को कुशलतापूर्वक करना ही योग है।
- गीता में योग से तात्पर्य - जीवात्मा का परमात्मा से मिलन। इसकी प्राप्ति हेतु ज्ञान, कर्म व भक्ति तीन साधन बताए गए हैं।

- **गीता में तीन प्रकार का योग बताया गया है-**

1. ज्ञान योग।
2. कर्म योग।
3. भक्ति योग।

ज्ञान योग	कर्म योग	भक्ति योग
प्रमुख प्रतिपादक – शंकराचार्य।	प्रमुख प्रतिपादक – बाल गंगाधर तिलक (पुस्तक–गीता रहस्य)	प्रमुख प्रतिपादक–रामानुज।
1. यह मुक्ति प्राप्त करने का मार्ग जिसमें व्यक्ति स्वयं का वास्तविक स्वरूप जानकर या आत्म–साक्षात्कार द्वारा मुक्ति प्राप्त करता है।	• इसमें निष्काम कर्मयोग व अनासक्त कर्मयोग पर बल दिया गया है।	• इसमें समर्पण तथा ईश्वर में अनन्य निष्ठा पर जोर दिया जाता है। जैसे–मीरा, प्रहलाद, सुदामा व नृसिंह।
2. इसके तीन अंग है। (i) श्रवण। (ii) मनन। (iii) निदि ध्यासन (ध्यान लगाना)	• निष्काम कर्मयोग–यह स्वार्थहीन कर्म है जिसमें फल की कामना छोड़कर केवल अपने क व्यि पालन करने की चेतना के साथ कर्म करना।	• व्यक्ति परोपकार की भावना रखते हुए निरंतर ईश्वर का स्मरण करता है।
3. गीता में ज्ञानी भक्त को सर्वश्रेष्ठ माना है। ज्ञान योग में व्यक्ति अपने चित्त को स्थिर करते हुए परमतत्त्व ब्रह्म (ज्ञान) को जानने का प्रयास करता है और अंत में आत्मतत्त्व व परमतत्त्व, ब्रह्म में विलीन हो जाता है।	• यह काण्ट के कर्त्तव्य के लिए कर्त्तव्य सिद्धान्त के समान है।	• इसमें व्यक्ति अपने प्रत्येक कर्म को ईश्वर को समर्पित कर देता है। इसे सरलतम मार्ग बताया गया है। यह सामान्य मनुष्यों हेतु श्रेष्ठ मार्ग है।

4. ज्ञान योग को गीता में सबसे कठिन बताया है।	• फलासक्ति से रहित होकर निष्काम भाव से सामाजिक क र्व्य (लोक संग्रह) तथा स्वधर्म का पालन करना। इसे गीता में निष्काम कर्मयोग कहा गया है।	• इसमें व्यक्ति पूर्ण आस्था एवं मनोयोग (मन से समर्पित) से स्वयं को ईश्वर को समर्पित करता है व स्वयं की इंद्रियों को नियंत्रित कर दूसरों के कल्याण हेतु कार्य करते हुए ईश्वर की उपासना करता है।
5. वेदांत दर्शन में ज्ञान मार्ग, आत्म साक्षात्कार, तीन रास्ते-श्रवण, मनन, निदि ध्यासन (ध्यान का अभ्यास)	• श्रीकृष्ण ने कहा है कि कर्म करने पर ही तुम्हारा अधिकार है फल पर नहीं। अत: फल की इच्छा से रहित होकर ही तुम्हे कर्म करना चाहिए।	
6. यह शरीर की नश्वरता, आत्मा की अमरता, ब्रह्म तत्त्व व आत्मतत्त्व के पूर्ण तादात्म्य (पूर्ण मिलन) का विशुद्ध ज्ञान ही योग का मूल आधार है।	• निष्काम कर्मयोग में प्रवृति मार्ग तथा निवृति मार्ग (परस्पर विरोधी विचार धाराएँ) का समन्वय करने का प्रयास किया गया है।	
7. ज्ञान मार्ग में गुरु की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।	• निष्काम कर्मयोग को ज्ञानयोग व भक्ति योग से श्रेष्ठ माना है। • कृष्ण कहते हैं निरंतर अभ्यास की अपेक्षा ज्ञान श्रेष्ठ है। ज्ञान की अपेक्षा भक्ति श्रेष्ठ है। भक्ति की अपेक्षा कर्मों के फल की आकांक्षा का त्याग (निष्काम कर्म) श्रेष्ठ है। • गीता में श्रीकृष्ण ने निष्काम कर्मयोग को ही मोक्ष का सर्वश्रेष्ठ मार्ग बताया है। कर्मयोगी इंद्रियों, मन व बुद्धि पर पूर्ण संयम रखता है। • गीता का निष्काम कर्म-काण्ट के 'कर्त्तव्य के लिए कर्त्तव्य सिद्धांत' के समान है।	

❖ ज्ञानयोग का प्रशासन में उपयोग :

1. संविधान, आचार संहिता, भारतीय न्याय संहिता व भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता का ज्ञान आवश्यक।
2. प्रशिक्षण व्यवस्था, फील्ड ट्रेनिंग व उच्च शिक्षा की व्यवस्था।
3. राजस्थान सिविल सेवा आचरण संहिता, 1971 की जानकारी होना।
4. अखिल भारतीय सिविल सेवा आचरण संहिता, 1968 की जानकारी होना।

❖ भक्तियोग का प्रशासन में उपयोग :

1. कानून व संविधान के प्रति समर्पण व जनसेवा का भाव हो।
2. आचार संहिता व नैतिक संहिता का पालन करना।
3. न्यूनतम संसाधनों के साथ परिवर्तन करना।

❖ कर्मयोग का प्रशासन में उपयोग :

1. उदासीनता कम होगी।
2. लालफीताशाही में कमी आएगी।
3. प्रत्यायोजन ज्यादा होगा।
4. पारदर्शिता व दक्षता में वृद्धि होगी।

- **राजयोग**–ध्यान, प्राणायाम, योग व समाधि के द्वारा स्वयं को सर्वोच्च सत्ता से जोड़ना।

❖ निष्काम कर्मयोग :

- कर्म करते समय फलों की आसक्ति हमें बंधन में डालती है। कर्म करते समय फल पर ध्यान नहीं देना चाहिए क्योंकि व्यक्ति का उस पर नियंत्रण नहीं होता। (कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन)
- कर्त्ता, कर्म, करण, चेष्टा व दैव (भाग्य) इन पांचों के मिलने पर फल उत्पन्न होता है।

❖ निष्काम कर्मयोग की विशेषताएँ :

1. प्रवृत्ति व निवृत्ति मार्ग का समन्वय/सक्रिय अवस्था है।
2. समाज में सक्रिय रहते हुए, कर्म करते हुए मनुष्य को आध्यात्मिक मुक्ति प्राप्त करने का उपदेश (कर्मेव कुरु, कर्मेव कुरु)।
3. व्यक्ति का परिणामों पर नियंत्रण नहीं होता है, केवल कर्म पर अधिकार होता है।
4. कर्मों पर अधिक ध्यान केन्द्रित करने के लिए फलों पर कम ध्यान देना चाहिए।
5. निष्काम कर्म मनुष्य को स्थितप्रज्ञ की अवस्था में पहुँचाते है।

6. स्वार्थ रहित कर्मों के लिए प्रेरित करती है। निष्क्रियता को नकारती है।

7. निरंतर अभ्यास से निष्काम कर्म संभव है।

8. आधुनिक अवधारणा - (NATO - not attached to out come)

- गीता का निष्काम कर्म फलवादी नीतिशास्त्र को नकार कर कर्त्तव्यवादी नीतिशास्त्र का प्रतिपादन करता है जो काण्ट के कर्त्तव्य के लिए कर्त्तव्य के समान है।

❖ निष्काम कर्मयोग की प्रशासन में प्रासंगिकता/महत्ता :

1. नैतिक द्वद्वों के निराकरण (हितों के टकराव से रक्षा) में सहायक।

2. बंधन की आसक्ति से बचाता है जैसे-विभाग पद व प्रियक्षेत्र आदि।

3. कर्त्तव्यचेतना के कारण जनहित को वरीयता देता है।

4. प्रशासक के व्यक्तिगत जीवन में भी सामंजस्य स्थापित करता है।

5. प्रशासक को कर्त्तव्यचेतना हेतु प्रेरित करता है।

6. कर्त्तव्य व परिणाम के द्वंद्व का समाधान करता है।

7. प्रवृत्ति व निवृत्ति में सामंजस्य स्थापित करना सिखाता है।

■ जैसे-भ्रष्टाचार :

- जीवन में संतुलन स्थापित करने के लिए निष्काम कर्म पर चलने की आवश्यकता है।
- कार्य करने के 3 प्रयोजन होते हैं-

1. आत्मसिद्धी 2. लोक संग्रह 3. भक्ति की भावना।

- कर्म 3 गुणों से प्रेरित होते हैं-

1. सत् गुण 2. रज गुण 3. तमो गुण।

सत् गुण	रज गुण	तम गुण
• यह सद्गुणों का प्रतीक है। सद्गुणो से युक्त व्यक्ति आध्यात्मिक सुख और ज्ञान प्राप्ति में प्रवृत्त रहता है। इसमें व्यक्ति शांत, दयालु, उदार और संतुष्ट रहता है।	• यह ऊर्जा का प्रतीक है। यह कर्म के प्रति राग उत्पन्न करता है। यह व्यक्ति भावुक, उत्तेजित, महत्वाकांक्षी व इंद्रिय विषयी सुखों की प्राप्ति का प्रयास करता है।	• यह दुर्गुणों का प्रतीक है। यह व्यक्ति अज्ञान और भ्रम से युक्त होता है। इस व्यक्ति में आलस्य, घृणा, क्रोध, हिंसा व ईर्ष्या इत्यादि गुण होते हैं।

योग क्षेम

- अप्राप्य की प्राप्ति, प्राप्ति को संरक्षित रखना तथा संरक्षित का संवर्धन करना योगक्षेम कहलाता है। सतत विकास लक्ष्य की अवधारणा इसी से प्रेरित है।

❖ योगक्षेम बहाम्यम :

- गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो मनुष्य मुझे लक्ष्य मानकर अनन्य भाव से मेरा स्मरण करते हुए कर्त्तव्य कर्म द्वारा पूजा करते हैं या कर्त्तव्य पथ पर चलते हैं तो उन मनुष्यों की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति एवं भलाई की जिम्मेदारी में वहन करता हूँ।

❖ योगक्षेम बहाम्यम का प्रशासन में उपयोग :

- कानूनों को लागू करवाना।
- नीतियों का प्रभावी क्रियान्वयन।
- लोगों की जान-माल की सुरक्षा करना (उदाहरण-नेकी की दीवार, चरण पादुका)
- प्रशासक को विकासात्मक उपलब्धियों की रक्षा की जानी चाहिए तथा नए कार्यों को भी संपादित किया जाना चाहिए।

❖ बाह्मी स्थिति :

- जब व्यक्ति सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकर ममता सहित अहंकार रहित होकर परम शांति को प्राप्त करता है। तो वह स्थिति बाह्मी स्थिति कहलाती है।

❖ गीता का प्रतिपाद/प्रतिपाद्य :

- अर्जुन-श्रीकृष्ण का संवाद ही गीता का प्रतिपाद्य विषय है जिसमें व्यक्तिगत, सामाजिक व नैतिक विषयों पर चर्चा की गई है व निष्काम कर्म को अधिक महत्व दिया गया है।

❖ अर्जुन के द्वंद्व का निराकरण :

- गीता में इस द्वन्द्व का निराकरण स्वधर्म और निष्काम कर्म के आधार पर किया गया है। श्रीकृष्ण ने किंकर्त्तव्यविमूढ़ अर्जुन को स्वधर्म के माध्यम से अपना क्षत्रिय कर्त्तव्य याद दिलाया तथा परिणामों की चिंता नहीं करके कर्त्तव्य पालन हेतु प्रेरित किया। मनुष्य परिणामों की चिंता करके कर्म ही न करे यह उचित नहीं है। गीता में इसे अकर्मण्यता कहा गया है। मनुष्य को सकारात्मक भावना से निरंतर कर्मशील रहना चाहिए। निष्काम कर्म मनुष्य को स्थित प्रज्ञ की अवस्था में पहुँचाता है।

गीता एवं काण्ट की अवधारणाएँ

❖ समानताएँ :

- दोनों परिणाम निरपेक्ष नीतिशास्त्र (परिणाम की चिंता नहीं करना) का समर्थन करते हैं तथा दोनों ही कर्त्तव्यपालन को सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानते हैं और कर्त्तव्यपालन में इंद्रियों और भावनाओं पर नियंत्रण आवश्यक मानते हैं।
- दोनों ही संकल्प की स्वतंत्रता को मानते हैं अर्थात् कर्म करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए।
- दोनों आत्मा की अमरता, पुनर्जन्म और ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं।
- फलासक्ति रहित होकर कर्म करने पर बल देते हैं।
- पाशविक प्रवृत्तियों पर नियंत्रण लगाने पर बल देते हैं।
- बौद्धिक व आध्यात्मिक विकास पर बल देते हैं।
- **दोनों में समानताओं के होते हुए भी निम्न असमानताएँ देखी जा सकती है-**

❖ असमानताएँ :

गीता	कांट
1. गीता के निष्काम कर्म में भावनाओं का दमन करने की बजाय उनका परिष्करण कर दैवीकरण करने पर बल दिया गया है।	1. यह इच्छाओं और भावनाओं का दमन कर बुद्धि के अनुसार कार्य करने पर बल देता है।
2. यह प्रयोजनवादी है और मोक्ष प्राप्ति को जीवन का चरम् लक्ष्य मानती है।	2. यह नियमवादी है और कठोरता के नियम की बात करता है।
3. निष्काम कर्म में मनुष्य द्वारा स्वभाविक रूप से कर्मपालन की बात की गई है।	3. कांट के नैतिक नियम आदेश है व्यक्ति इसके पालन में बाध्यता अनुभव करता है।
4. गीता में परमसुख मोक्ष प्राप्ति है।	4. जबकि इसमें परमसुख संकल्प के आनंदपूर्ण जीवन से है।
5. गीता धार्मिक ग्रन्थ है।	5. यह धर्म की अवधारणा से स्वतंत्र है।
6. नैतिकता साधन है और ईश्वर साध्य है।	6. यहाँ नैतिकता साध्य है और ईश्वर साधन है।
7. यह अधिक व्यावहारिक व उदारवादी है।	7. जबकि यह कम व्यावहारिक व कठोरतावाद को प्रस्तुत करती है।
8. इसमें नीति, ज्ञान, कर्म व भक्ति का समन्वय है।	8. यह ज्ञान प्रधान है।
9. यह कुछ अपवादों को स्वीकार करती है।	9. जबकि यहाँ अपवाद की अनुमति नहीं है।

गीता-क्रोध प्रबंधन

❖ क्रोध का कारण:

- गीता में बताया गया है कि जब व्यक्ति की कामनाओं में बाधा उत्पन्न होती है तब क्रोध का जन्म होता है।

❖ परिणाम :

- क्रोध से व्यक्ति पतन की ओर अग्रसर होता है क्योंकि इससे हमारी स्मरण शक्ति व बुद्धि का नाश होता है। नरक के 3 द्वार-क्रोध, काम व लोभ है। इसमें क्रोध भी शामिल है।
- आसुरी प्रवृत्तियों का जन्म होने लगता है।
- बुद्धि की स्थिरता समाप्त हो जाती है।

❖ क्रोध प्रबंधन :

- गीता व्यक्ति के चिंतन को बदलने पर बल देती है।

भगवद् गीता की प्रशासन में भूमिका

- प्रशासकीय सेवाएँ व्यक्ति और समाज को व्यवस्थित करने के उपकरण है। वर्तमान परिदृश्य में मनुष्य अपरिमित इच्छाओं, लालसाओं, अधिकाधिक भोग प्रवृत्तियों तथा भौतिक सुखों के संग्रहों में प्रयत्नशील है। मनुष्य की मूल्य रहित जीवन पद्धति इस समस्या को और अधिक जटिल बना देती है। ऐसी स्थिति में स्थित प्रज्ञ, स्वधर्म, समत्व योग, निष्काम कर्मयोग और सबसे ऊपर लोकसंग्रह की अवधारणा प्रशासक को बाह्य अभिप्रेरणा प्रदान करती है। यही बाह्य प्रेरणा धीरे-धीरे अंत:प्रेरणा को विकसित करती है और प्रशासकीय नीतिशास्त्र में उच्च आदर्शों को स्थापित करती है।

❖ भगवद्गीता का प्रशासन में अनुप्रयोग/भूमिका :

1. लोक संग्रह :

- जनता के कल्याण हेतु प्रशासनिक अधिकारियों की नियुक्ति की जाती है व जनता से प्राप्त कर उन्हें वेतन दिया जाता है। अत: मन, कर्म और वचन से जनता की सेवा कर लोकऋण से मुक्ति का प्रयास करना चाहिए। बिना स्वार्थ के लोककल्याण के लिए कार्य करना चाहिए इसे ही 'परोपकारी स्वार्थवाद' कहा जाता है।

2. स्थित प्रज्ञता :

- यह ऐसी स्थिति है जब मनुष्य अपनी इंद्रियों, वासनाओं एवं मन को नियंत्रित कर अनासक्ति से युक्त होकर निष्काम कर्म करता है। वह जय-पराजय तथा सुख-दु:ख में एक समान दृष्टिकोण रखता है। वर्तमान में समाज की जटिलता के साथ-साथ प्रशासन भी जटिल हो गया है। एक प्रशासक को चाहिए कि वह संयत होकर अपना कर्त्तव्य कुशलतापूर्वक करे यही प्रशासन में सत्यनिष्ठता का आधार है।

3. समत्व योग :

- एक प्रशासनिक अधिकारी को विपरीत परिस्थितियों में भी अपना व्यवहार या दृष्टिकोण एक समान रखना चाहिए। इससे समाज में समता स्थापित होगी और सामाजिक न्याय की स्थापना होगी।

4. स्वधर्म :

- विभिन्न प्रशासनिक अधिकारियों को अपने-अपने क्षेत्रों में निर्धारित कार्य पूर्ण करने होते हैं। अत: प्रशासनिक अधिकारियों को चाहिए कि वे स्वयं के लिए निर्धारित कर्त्तव्यों का उचित पालन करें एवं अंतिम लक्ष्य लोककल्याण की स्थापना का प्रयत्न करें।

5. योगक्षेम :

- प्रशासन में लोककल्याण हेतु कुछ लक्ष्य निर्धारित किए जाते हैं व उनकी प्राप्ति हेतु सकारात्मक प्रयास भी किए जाते हैं और अंत में ऐसे प्रयासों को निरंतर बनाए रखने व उनके संवर्धन के प्रयास किए जाते हैं। जैसे-सतत् विकास लक्ष्य (SDG)

6. नैतिक द्वन्द्व :

- अहिंसा और कर्तव्यपालन में द्वन्द्व होने पर कर्तव्यपालन को महत्व देना चाहिए। अर्जुन के नैतिक द्वन्द्व की स्थिति में होने पर श्रीकृष्ण द्वारा दिए गए उपदेश के आधार पर वह कर्तव्यपालन करता है। उसी प्रकार एक प्रशासक के सामने इसी प्रकार की स्थिति उत्पन्न हो सकती है तो ऐसी स्थिति में प्रशासक को चाहिए कि वह स्वार्थ, मोह, लोभ, लाभ तथा दुर्भावना से मुक्त होकर अपने कर्तव्यों का पालन करें।

7. विकेन्द्रीकरण और उचित नेतृत्व :

- पांडवों की सेना में उचित विकेन्द्रीकरण था। साथ ही उचित नेतृत्व भी था जिसके कारण संसाधनों का कुशल उपयोग, सामूहिक भागीदारी व निर्णयन की स्वतंत्रता इत्यादि प्रशासनिक कार्यों का उचित समन्वय बना रहा। एक प्रशासक को भी अपने अधीनस्थों को सत्ता का प्रत्यायोजन कर उचित नेतृत्व प्रदान करना चाहिए।

8. अभिप्रेरणा का उचित संचार :

- अधीनस्थों को अपने कर्तव्यों के प्रति अभिप्रेरित करना चाहिए एवं उचित संचार व्यवस्था स्थापित कर समयानुसार उचित करना चाहिए।

9. समस्याओं का उचित समाधान :

- गीता का अध्ययन समस्याओं को समझने और विवेकपूर्ण ढंग से उनका समाधान ढूंढने की तकनीकी का ज्ञान कराता है। अत: प्रशासक को चाहिए कि वह समस्याओं को समझकर उनका उचित समाधान करें।

10. कर्तव्य बोध:

- यह विकट परिस्थितियों में भी अपने कर्तव्यों के पालन की प्रेरणा देती है। अत: प्रशासकों को अपने कर्त्तव्यों के पालन हेतु गीता अत्यधिक उपयोगी है।
- इस प्रकार गीता में टीमवर्क (सामूहिक कार्य), संसाधनों का समुचित उपयोग, श्रम विभाजन, आदेशों की एकता, समयानुसार रणनीति, नवाचार, अधीनस्थो में अभिप्रेरणा, नेत्तृत्व क्षमता तथा समस्याओं को समझने का कौशल आदि का समुचित उपयोग दिखाई देता है। अत: यह प्रशासनिक दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

❖ प्रशासन में गीता को लागू करने के प्रभाव :

- विधि का शासन स्थापित होगा।
- कानून सम्मत व्यवहार होगा।
- सहभागिता आएगी जिससे लोकतंत्र मजबूत होगा।
- शासन में पारदर्शिता बढ़ेगी।
- जवाबदेहिता में वृद्धि होगी।
- प्रशासन में कार्यकुशलता व दक्षता को बढ़ावा मिलेगा।
- मितव्ययता में वृद्धि होगी।

❖ महिलाओं के संबंध में गीता के विचार :

- यह महिला सुरक्षा, मर्यादा, संरक्षण, सम्मान तथा गरिमा के संबंध में विचार प्रस्तुत करती है।
- महिलाओं की महाभारत में कई स्थानों पर प्रशंसा की गई है। महाभारत में कहा गया है कि ईश्वर भी पतिव्रता स्त्रियों के क्रोध से डरता है।
- महाभारत में कहा गया है कि जो महिलाएँ अपने कर्त्तव्यों का पालन समुचित धैर्य के साथ करती है। वे सम्पूर्ण विश्व की माताएँ है अर्थात् सृजनकर्ता है।
- जिन परिवारों में महिलाओं का सम्मान नहीं होता और जहाँ महिलाएँ प्रसन्न नहीं रहती उन घरों का विनाश होता है।
- प्रशासन को चाहिए कि वो महिलाओं का सम्मान करे, उनका संरक्षण करे व संवर्धन करे उनकी मर्यादा को बनाए रखे व उनके अधिकारों व हितों को सुनिश्चित करें।

❖ **वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृहाति :**

''जिस प्रकार मनुष्य अपने फटे पुराने वस्त्रों का त्याग करके नए वस्त्र धारण करता है ठीक उसी प्रकार प्रशासक को विभाग, स्थिति व नियुक्ति से जुड़ाव नहीं रखकर हमेशा अपनी जिम्मेदारी हेतु तैयार रहना चाहिए।'' - किरन बेदी।

❖ **यथेच्छसि तथा कुरु :**

- 'इस पर गहराई से विचार करो और जैसा चाहो वैसा करो।' प्रशासक को कानून का ज्ञान होना चाहिए तथा उसके अनुसार निर्णय हो।
- महापुरुष जो भी कर्म करते हैं, सामान्य जन उनका पालन करते है। वे जो आदर्श स्थापित करते हैं। संसार उनका अनुसरण करता है। जैसे-पटेल, राजगोपालाचार्य, एम.विश्वैश्वरैया।
- जब-जब धरती पर धर्म का पतन व अधर्म में वृद्धि होती है तब-तब ईश्वर पृथ्वी पर अवतार लेते हैं।
- ''विचारों की शुद्धता, विनम्रता, मौन, आत्मनियंत्रण तथा उद्देश्य की निर्मलता इन सबको मन के तप के रूप में घोषित किया गया है''-डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम।

कुल मिलाकर भगवद्गीता एक प्रशासक को ईमानदारी, वैराग्य व जनता के लिए काम करने के प्रति समर्पण और एक भारत, श्रेष्ठ भारत की परिकल्पना की शिक्षा देती है।

RAS मुख्य परीक्षाओं में आये हुये प्रश्न

1. गीता के अनुसार निष्काम कर्मयोग की धारणा का वर्णन कीजिए? (2016)
2. गीता के अनुसार 'स्वधर्म' को परिभाषित कीजिए? (2016)
3. भगवत गीता किस तरह अर्जुन के समक्ष द्वंद्व का निराकरण करती है? प्रशासनिक अधिकारी के रूप में आप प्रशासनिक दुविधा के निराकरण में किस तरह गीता के सिद्धान्तों का प्रयोग कर सकते हैं? (2018)
4. प्रशासन का उद्देश्य लोक-कल्याण है। गीता का कौनसा सिद्धान्त इस आशय की पुष्टि करता है? (2018)
5. भगवद्गीता का अनासक्ति सिद्धान्त किस रूप में एक प्रशासक के जीवन में सार्थक है?(2021)
6. प्रशासनिक कर्त्तव्य के निर्वहन में 'स्थितप्रज्ञ' की संकल्पना की भूमिका को स्पष्ट कीजिए?(2021)

***